© 2021 IJSRST | Volume 8 | Issue 4 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section : Education
DOI : https://doi.org/10.32628/IJSRST

जैन शिक्षा पद्धति एवं इससे जुड़े संगठन

रणविजय नारायण ठाकुर

इतिहास विभाग, पंडित यमुना कार्यी जयंती महाविद्यालय, बी०आर०ए०बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्राचीन और मध्यकालीन इतिहासकारों के विचारानुसार अधिकांश धर्म और सम्प्रदायों का विकास राज्याश्रय मिलने के बाद ही संभव हुआ है। राज्याश्रय ने ही बौद्ध धर्म और जैन धर्म को उनके प्रारंभिक दिनों में इनके अंकुरों के मलीन होने से बचाये रखा। इसीलिए हिन्दू धर्म और उसके विकट कर्मकांड के प्रबल प्रतिरोध के बावजूद जैन धर्म और बौद्ध धर्मों की जड़े भारत की भूमि में जमी ही नहीं, बल्कि इनके पौधे भी विकसित, पुषित एवं पल्लवित हुए। बौद्ध धर्म तो नदी क्या समुद्र पार कर विदेश भी जा पहुँचा, जहाँ वह आज भी पूर्ण प्रतिष्ठित और सर्वमान्य है। राज्याश्रय की ओर से सहायता, सुरक्षा और संरक्षा हमेशा प्राप्त होने के फलस्वरूप यह सब कुछ संभव हो सका।

महान विद्वानों और जैन धर्म के आचार्यों ने इसे वेदकालीन धर्म सिद्ध करने का प्रयास किया है। जैन धर्म का प्राचीन इतिहास इसके चौबीस तीर्थंकरों के उदाहरणीय चरित्र और कठिन परिश्रम का इतिहास है। आजतक जैन धर्म जिस रूप में जीवित रहा है, उसके मूल में चरम तीर्थंकर भगवान महावीर और उनके गंधारों एवं सुदत्तरवर्ती आचार्यों की भूमिका रही है। भगवान महावीर बिहार प्रांत की धरती की उपज थे और इस प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विहारचर्या के द्वारा उन्होंने अपने उपदेशामृत प्रदान किये थे। तथ्यतः इस समय का जैन धर्म उन्हीं विहार और भगवान महावीर द्वारा दिये गये उपदेशों एवं प्रवचनों का प्रतिफल है।

वर्तमान समय में देश के जिन प्रदेशों में जैन धर्म अपेक्षाकृत काफी प्रतिष्ठित है, उनमें गुजरात, राजस्थान, और मध्य प्रदेश का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन गुजरात को हम हृदयस्थली स्वीकार कर सकते हैं। गुजरात की धरती में जैन धर्म की इस प्रतिष्ठा के उत्सव की खोज की जाये तो ईसा की बारहवीं शताब्दी के चोलुक्य राजा कुमारपाल और उसके धर्म गुरू हेमचन्द्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर दृष्टि रूक जाती है।

जैन परम्परा के कवियों ने इन्हीं श्लाका पुरूषों की कथा से महापुराणों की रचना की है। श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा है कि ऋभषदेव के जन्म से ही भागवत के लक्षण दिख पड़े थे। श्रीमद्भागवत् में भगवान विष्णु के जिन बाईस अवतारों की कथा है, उनमें से आठवाँ अवतार इन्हीं ऋषभदेव का गिनया गया है, जो जैन धर्म के आदि तीर्थंकर हैं।[1] जो व्यक्ति अहिंसा आदि व्रतों से सुसंस्कृत थे, वे ब्राह्मण वर्ण में परिगणित किये गये। गुण और कर्म के अनुसार चातुवर्ण्य व्यवस्था स्थापित हुई। ऋषभदेव ही प्रमुख रूप से कर्मभूमि व्यवस्था के अग्र सूत्राधार थे। अतः इन्हें आदि ब्रह्मा या आदि नाथ कहते हैं।[2]

भारतीयों का जीवन प्राचीन काल से धर्मगत उत्कंठ से अनुप्राणित रहा है, जिसमें नैतिक मूल्यों, आचरणगत अभिव्यक्तियों तथा जगन्नियता के प्रति समर्पण की भावना का सन्निवेश था। धर्म का व्यवहारिक महत्व कर्तव्य का समुचित पालन था, जिसके माध्यम से व्यक्ति लौकिक उत्कर्ष के साथ–साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त करता था। परतवर्ती काल में हिन्दू धर्म–दर्शन के विपरीत क्रान्तदर्शी धर्म के रूप में कई धार्मिक विचारधाराओं और संगठनों का उदय और विकास हुआ, जिनके कारण सम्पूर्ण भारत में विचारों की क्रांति उठ खड़ी हुई। इसमें जैन धर्म भी एक है।

जैन धर्मावलम्बियों के अनुसार जैन धर्म की प्राचीनता प्रागैतिहासिक है। साथ ही मोहनजोदड़ो से प्राप्त योगी की मूर्ति के संबंध में इस के आदि प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का अनुमान है।[3] वस्तुतः इस देश में वैराग्य, कृच्छ साधना, योगावार और तपश्चर्या की प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा का विकास जैन धर्म में हुआ देखा जा सकता है। ऋषभेदव भी योगीराज के रूप में अभिहित हुए हैं। उनके योगयुक्त व्यक्तित्व से शंकर के योगी रूप का काफी सामीप्य है। मोहनजोदड़ो में योग प्रथा सूचक जो चिन्ह मिले हैं, उनका संबंध जैन और शैव दोनों ही परम्पराओं से जोड़ा जा सकता है।[4] इतना ही नहीं, वेदों में उल्लिखित कतिपय नामों को जैन तीर्थंकरों के नामों के साथ जोड़ा जाता है। ऋग्वेद के एक स्थल पर ''ऋषभ'' शब्द आया है,[5] जिसे ऋषभदेव के साथ समीकृत किया जाता है। यजुर्वेद में लिखा है कि ''ऋषभ धर्म प्रवर्तकों में श्रेष्ठ है।'' अथर्ववेद और गोपथ ब्राह्मण में संकेतित स्वयंभू काश्यप का तादात्म्य ऋषभदेव से किया जाता है।[6]श्रीमद्भागवत में भी ऋषभदेव के उदात्त उपदेश और सिद्धांत संकलित है।[7]

आदिनाथ से आरंभ होकर महावीर तक की यात्रा में जैन धर्म में तिरेसठ महापुरूषों का अवतरण हुआ। इन तिरेसठ श्लाका पुरूषों में चौबीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव की गणना की जाती है। तीर्थंकर जिन साधकों ने अद्भुत सिद्धि प्राप्त कर 'केवल्य' प्राप्त किया तथा संसार सागर को पार करने के लिए धर्मोपदेश दिये, वे ही तीर्थंकर कहे गये। जैन धर्म में इनकी संख्या चौबीस है।

ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्माप्रभ, सुदार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शहतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूण्य, विमलनाथ, अनंतानाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, महावीर स्वामी।

जैन पुराणों में भारतवर्ष का इतिहास उसके भौगोलिक वर्णन के साथ किया गया मिलता है। भारत जम्बूद्वीप के दक्षिणी भाग में स्थित है। इसके उत्तर में हिमालय पर्वत है और मध्य में विजयार्द्ध पर्वत। पश्चिम में हिमवान् से निकली हुई सिन्धु नदी बहती है और पूरब में गंगा नदी, जिसके उत्तर भारत के तीन विभाग हैं। ये ही भारत के छह खंड हैं, जिन्हें विजय करके कोई सम्राट चक्रवर्ती की उपाधि प्राप्त करता था।[8] जैन धर्म में उल्लिखित बारह चक्रवर्ती हैं– भरत, सगर, मधवा, सतनकुमार, शांति, कन्यु, अरह, सुभोम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त।

जैन धर्म में नौ बलदेवों में अथल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनंद, नंदन, पद्म, राम इत्यादि। उसी प्रकार नौ वासुदेव भी थे जिनमें त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वम्भू, पुरूषोत्तम, पुरूष सिंह, पुरूषपुण्डरीक, दत्त, नारायण, कृष्ण। प्रतिवासुदेवों में अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधु, निशुम्भ, बलि, प्रहलाद, रावण, जरासंघ। जैन धर्म के उपर्युक्त तिरेसठ श्लाकापुरूषों में जिन्होंने अपनी अमिट और चिरस्थायी पहचान बनायी है, उनमें सर्वप्रथम हैं आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ, द्वितीय हैं 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और तृतीय हैं परम तीर्थंकर भगवान महावीर।

आदि तीर्थंकर ऋषभनाथ–

अयोध्या के आदित्य वंश में इक्ष्वाकु के सौ पुत्र प्रसिद्ध हैं।[9] इसी इक्ष्वाकु के वंश में स्वायंधू के पुत्र प्रियव्रत, प्रियव्रत के पुत्र आग्नीर्थ आग्नीर्थ के नाभिराय और नाभि के पुत्र ऋषभेदव हुए। अंतिम कुलकर नाभिराय के नाम पर ही इस महादेश का सर्वप्राचीन ज्ञात नाम अजनाभवर्ष प्रसिद्ध हुआ था।[10]

भारतवर्ष की अयोध्या नगरी में नाभिराय और मारूदेवी के पुत्र आदिनाथ ऋषभनाथ हुए, जो जैन परम्परा के प्रथम तीर्थंकर थे। भागवतपुराण के अनुसार ऋषभनाथ भगवान विष्णु के एक अवतार थे जिनके वंश, जीवन तपश्चरण का वर्णन श्रीमद्भागवत में मिलता है।[11] आदिपुराण में जिन सेनाचार्य ने ऋषभेदव को अयोध्या में ही उत्पन्न बताया है। जैन परम्परा के अनुसार ऋषभदेव प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर, प्रथम धर्म चक्रवर्ती और नीति के प्रथम प्रकाशक कहे जाते हैं। उन्होंने सुभंगला और सुनन्दा नाम की अपनी बहनों से विवाह किया।[12] जब वे राज सिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने कृषि, असि, मसि, शिल्प की तथा देश

के नगरों एवं वर्ण व जातियों आदि का सुविभाजन किया।[13] सुमंगला से भारत ब्राह्मी तथा सुनन्दा से बाहुबली और सुन्दरी का जन्म हुआ।[14] जिन्हें उन्होंने समस्त कलाएँ एवं विद्याएँ सिखायी।[15]

एक दिन राजसभा में नीलाजना नाम की नर्तकी की नृत्य करते–करते ही मृत्यु हो गई। इस घटना से ऋषभ को संसार से वैराग्य हो गया और वे राज्य का परित्याग कर तपस्या करने वन को चले गये। उनके पुत्र भरत राजा हुए और उन्होंने अपने दिग्विजय द्वारा सर्वप्रथम चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। उनके कनिष्ठ भ्राता बाहुबलि भी विरक्त होकर तपस्या में प्रवृत हो गये।[16] ऋषभ भरत चक्रवर्ती के नाम पर यह देश भारतवर्ष कहलाया।[17]

वस्तुतः जैन धर्म के प्रवर्तक अथवा संस्थापक ऋषभ ही थे, जिन्होंने सर्वप्रथम शुद्ध आचरण, पावन चरित्र और पवित्र मन पर बल दिया। अंततः केवल ज्ञान प्राप्त कर ये अर्हन्त जिन हुए और अहिंसा एवं निवृति प्रधान मानव धर्म की स्थापना कर आदि तीर्थंकर कहलाये। ऋषभावतार रजोगुण से भरे हुए लोगों को केवल्य की शिक्षा देने के लिए हुआ था।[18] तपस्या काल में वे नग्न रहते थे और केवल शरीर मात्र ही उनके पास अभीष्ट था। लोगों द्वारा तिरस्कार किये जाने, गाली–गलौज किये जाने तथा मारे जाने पर भी वे मौन ही रहते थे। अपने कठोर तपश्चरण द्वारा उन्होंने केवल्य की प्राप्ति की तथा दक्षिण कर्नाटक तक नाना प्रदेश में परिभ्रमण किया। वे कुटकाचल पर्वत के वन में उन्मत्त की तरह नग्न रूप में विचरने लगे। बाँसों की रगर से वन में आग लग गई और उसी में उन्होंने अपने को भस्म कर डाला।[19]

जैन धर्म के अनुसार मानव का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष प्राप्ति के लिए मनुष्य क्या प्रयत्न करे, इसके लिए साधारण गृहस्थों और भिक्षुओं में भेद किया गया है। जिस नियमों का पालन एक भिक्षु कर सकता है, साधारण श्रवाक उनका पालन नहीं कर सकेगा। इसीलिए जीवन की इन दोनों स्थितियों में मुमुक्षु के लिए जो भिन्न–भिन्न धर्म है, उनका पृथक रूप से प्रतिपादन करना आवश्यक है।

पाँच अणुव्रत–

गृहस्थ के लिए पाँच अणुव्रतों का पालन अनिवार्य है। गृहस्थों के लिए यह संभव नहीं, कि वे समस्त पापों का त्याग कर सके। संसार के कृत्यों में फंसे रहने से उन्हें कुछ–न–कुछ अनुचित कृत्य करने ही पड़ेंगे, अतः उनके लिए अणुव्रतों का विधान किया गया है। अणुव्रत के कई प्रकार होते हैं जैसे अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अस्तेय, ब्रह्मचयर्याणुव्रत, परिग्रह परिमाण अणुव्रत।

जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अहिंसाव्रत का पालन करे मन, वचन और शरीर से किसी भी प्रकार की हिंसा करना अत्यंत अनुचित है। परंतु सांसारिक मनुष्यों के लिए पूर्ण अहिंसा व्रत धारण कर सकना कठिन है। अतः श्रावकों के लिए 'स्थूल अहिंसा' का विधान किया गया है। स्थूल अहिंसा का अभिप्राय यह है कि निरपराधियों की हिंसा न की जाए। जैन ग्रंथों के अनुसार अनेक राजा लोग अहिंसाणुव्रत का पालन करते हुए भी अपराधियों को दंड देते रहे हैं, और अहिंसक जन्तुओं का घात करते रहे हैं, अतः इस व्रत को स्थूल अर्थों में ही लेना चाहिए। मनुष्यों में असत्य भाषण करने की प्रवृति अनेक कारणों से होती है। द्वेष, स्नेह तथा मोह का उद्वेग इसमें प्रधान कारण है। इन सब प्रवृतियों को दबाकर सर्वदा सत्य बोलना सत्याणुव्रत कहलाता है। किसी भी प्रकार से दूसरे की सम्पत्ति चोरी न करना, और गिरी हुई, पड़ी हुई, व रखी हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण न कर उसके स्वामी को दे देना अचौर्याणुव्रत कहलाता है। मन, वचन तथा कर्म द्वारा पर स्त्री का समागम न कर अपनी पत्नी से ही संतोष तथा स्त्री के लिए न, वचन व कर्म द्वारा पर पुरूष का समागम न कर अपने पति से ही संतोष रखना ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है। परिग्रह परिमाण अणुव्रत आवश्यकता के बिना बहुत से धन–धान्य को संग्रह न करना परिग्रह परिमाण अणुव्रत कहलाता है। गृहस्थों के लिए यह तो आवश्यक है, कि वे धन–उपार्जन करें, पर उसी में लिप्त हो जाना और अर्थ संग्रह के पीछे भागना पाप है।

तीन गुणव्रत–

इन अणुव्रतों का पालन तो गृहस्थों को सदा करना ही चाहिए। पर इनके अतिरिक्त समय–समय पर अधिक कठोर व्रतों का ग्रहण करना भी उपयोगी है। सामान्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थों को चाहिए कि वे कभी–कभी अधिक कठोर व्रतों की भी दीक्षा ले। ये कठोर व्रत जैन धर्म ग्रंथों में गुणव्रत के नाम से कहे गये हैं। इनका संक्षिप्त रूप से प्रदर्शन करना उपयोगी है। दिग्विरति– गृहस्थ को चाहिए कि कभी–कभी यह व्रत ले ले, कि मैं इस दिशा में इससे अधिक दूर नहीं जाऊँगा। मनुष्य बहुत से ऐसे कार्य करता है जिनसे उसका कोई संबंध नहीं होता। ऐसे कार्यों से सर्वथा बचना चाहिए। गृहस्थ को उपभोग, परिभोग, परिमाण व्रत ले लेना चाहिए कि मैं परिमाण में इतना भोजन करूँगा, भोजन में इतने से अधिक वस्तुएँ नहीं खाऊँगा, और इससे अधिक भोग नहीं करूँगा इत्यादि।

इन तीन गुणव्रतों के अतिरिक्त चार शिक्षाव्रत हैं, जिनका पालन भी गृहस्थों को करना चाहिए। देशविरति जिसके अंतर्गत एक देश व क्षेत्र निश्चित कर लेना, जिससे आगे गृहस्थ न जाए, और न अपना कोई व्यवहार करे। सामयिक व्रत के अंतर्गत निश्चित समय पर सब सांसारिक कृत्यों से विरत होकर, सब राग–द्वेष छोड़ साम्य भाव धारणकर शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन होने की क्रिया को सामयिक व्रत कहते हैं। प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी के दिन सांसारिक कार्यो का परित्याग कर मुनियों के समान जीवन व्यतीत करने के प्रयत्प को पौषधोपवासव्रत कहते हैं। इस दिन गृहस्थ को सब प्रकार का भोजन त्यागकर धर्मकथा श्रवण में ही अपना समय व्यतीत करना चाहिए। विद्वान अतिथियों का और विशेषतया मुनि लोगों का सम्मानपूर्वक स्वागत करना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।

इन गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों का पालन गृहस्थों के लिए बहुत लाभदायक है। वे इनसे अपना जीवन उन्नत कर सकते हैं और मुनि बनने के लिए उचित तैयारी कर सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य मुनि नहीं बन सकता। संसार का व्यवहार चलाने के लिए गृहस्थ धर्म का पालन करना भी आवश्यक है। अतः जैन धर्म के अनुसार गृहस्थ जीवन बिताना कोई बुरी बात नहीं है। पर गृहस्थ होते हुए भी मनुष्य को अपना जीवन इस ढ्ंग से व्यतीत करना चाहिए, कि पाप में लिप्त न हो और मोक्ष साधन में तत्पर रहे।

पाँच महाव्रत–

जैन मुनियों के लिए आवश्यक है कि वे पाँच महाव्रतों का पूर्णरूप से पालन करे। सर्वसाधारण गृहस्थ लोगों के लिए यह संभव नहीं होता कि वे पापों से सर्वथा मुक्त हो सकें। इस कारण उनके लिए गणुव्रतों का विधान किया गया है। पर मुनि लोगों के लिए, जो कि मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिए ही संसार त्यागकर साधना में तत्पर हुए हैं, पापों का सर्वथा परित्याग अनिवार्य है। इसलिए उन्हें पाँच महाव्रतों का पालन करना चाहिए। पाँच महाव्रतों के अधीन निम्नलिखित महाव्रत हैं, जिनका उल्लेख यहाँ आपेक्षित है–

अहिंसा महाव्रत– जैन मुनि के लिए अहिंसाव्रत बहुत महत्व रखता है। किसी भी प्रकार से जानबूझकर या बिना जाने–बूझे प्राणी की हिंसा करना महापाप है। अहिंसा व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन करने के लिए कुछ व्रत उपयोगी है। पहला, ईर्ष्या समिति जिसके अंतर्गत चलते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं हिंसा न हो जाये। इसके लिए उन्हीं स्थानों पर चलना चाहिए, जहाँ भली–भाँति अच्छे मार्ग बने हुए हों, क्योंकि वहाँ जीव–जन्तुओं को पैर से कुचले जाने की संभावना बहुत कम होगी। दूसरा भाषा समिति जिसमें भाषण करते हुए सदा मधुर तथा प्रिय भाषा बोलनी चाहिए। कठोर वाणी से वाचिक हिंसा होती है और साथ ही इस बात की भी संभावना रहती है कि शाब्दिक लड़ाई प्रारंभ न हो जाये। एषणा समिति के तहत भिक्षा ग्रहण करते हुए मुनि को यह ध्यान रखना चाहिए कि भोजन में किसी प्राणी की हिंसा तो नहीं की गई है, अथवा भोजन में किसी प्रकार के कृमि तो नहीं है। आदान–क्षेपणा समिति के अंतर्गत मुनि को अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए जिन वस्तुओं का अपने पास रखना आवश्यक है, उनमें यह निरंतर देखते रहना चाहिए कि कहीं कीड़े तो नहीं है। व्युत्सर्ग समिति– पेशाब और मल त्याग करते समय भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस स्थान पर वे ये कार्य कर रहे हैं, वहाँ कोई जीव–जन्तु तो नहीं है।

जैन मुनि के लिए अहिंसा का व्रत पालन करना अत्यंत आवश्यक है। प्रमाद व अज्ञान से तुच्छ से तुच्छ जीव का वध भी उसके लिए पाप का कारण बनता है। इसीलिए इस व्रत का पालन करने के लिए इतनी सावधानी से कार्य करने का उपदेश दिया गया है।

असत्य–त्याग महाव्रत– सत्य परन्तु प्रिय भाषण करना असत्य त्याग महाव्रत कहलाता है। यदि कोई बात सत्य भी हो, परन्तु कटु हो, तो उसे नहीं बोलना चाहिए। इस व्रत के पालन में पाँच भावनाएँ बहुत उपयोगी है। जिसमें अनुविम–भाषी भली–भाँति विचार किये बिना भाषण नहीं करना चाहिए। कोहं परिजानाति के तहत जब बोध व अहंकार का वेग हो, तो भाषण नहीं करना चाहिए। लोभी परिजानाति– लोभ का भाव जब प्रबल हो, तो भाषण नहीं करना चाहिए। भयं–परिजानाति– डर के कारण असत्य भाषण नहीं करना चाहिए। हासं परिजानाति– हंसी में भी असत्य भाषण नहीं करना चाहिए। सत्य का पालन करने के लिए सम्यक् प्रकार से विचार करके भाषण करना, तथा लोभ, मोह, भय, हास व अहंकार से असत्य भाषण न करना अत्यंत आवश्यक है।

अस्तेय महाव्रत– किसी दूसरे की किसी भी वस्तु को उसकी अनुमति के बिना ग्रहण न करना तथा जो वस्तु अपने को नहीं दी गई है, उसको ग्रहण न करना तथा ग्रहण करने की इच्छा भी न करना अस्तेय महाव्रत कहलाता है।

इस महाव्रत का पालन करने के लिए मुनि लोगों को कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे जैन मुनि को किसी घर में तब प्रवेश नहीं करना चाहिए, जबतक कि गृहपति की अनुमति अंदर आने के लिए न ले ली जाए। भिक्षा में जो कुछ भी भोजन से प्राप्त हो, उसे तबतक ग्रहण न करें, जब तक कि गुरू को दिखलाकर उससे अनुमति न ले ली जाए। जब मुनि को किसी घर में निवास करने की आवश्यकता हो, तो पहले गृहपति से अनुमति प्राप्त कर ले और यह निश्चित रूप से पूछ ले कि घर के कितने हिस्से में और कितने समय तक वह रह सकता है। गृहपति की अनुमति के बिना घर में विद्यमान किसी आसन, श्य्या व अन्य वस्तु का उपयोग न करे। जब कोई मुनि किसी घर में निवास कर रहा हो, तो दूसरा मुनि भी उस घर में गृहपति की अनुमति के बिना निवास न कर सके।

बह्मचर्य महाव्रत–

जैन मुनियों के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का भी महत्व है। अपने विपरीत लिंग के व्यक्ति से किसी प्रकार का संसर्ग रखना मुनियों के लिए निषिद्ध है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिए कुछ भावनाओं का विधान किया गया है जैसे किसी भी स्त्री से वार्तालाप न किया जाए। किसी स्त्री की तरफ दृष्टिपात भी न किया जाए। गृहस्थ जीवन में स्त्री संसर्ग से जो सुख प्राप्त होता था, उसका मन में चिंतन भी न किया जाए। अधिक भोजन न किया जाए। मसाले, तिक्त पदार्थ आदि ब्रह्मचर्य नाशक भोजनों का परित्याग किया जाए। जिस घर में कोई स्त्री रहती हो वहाँ निवास न किया जाए।

साधुनियों के लिए नियम इनसे सर्वथा विपरीत हैं। किसी पुरूष के साथ बातचीत करना, पुरूष का अवलोकन करना और पुरूष का चिंतन करना, उनके लिए निषिद्ध है।

अपरिग्रह महाव्रत– किसी भी वस्तु, रस व व्यक्ति के साथ अपना संबंध न रखना तथा सबसे निर्लिप्त रहकर जीवन व्यतीत करना अपरिग्रह महाव्रत का पालन कहलाता है। जैन मुनियों के लिए अपरिग्रह व्रत का अभिप्राय बहुत विस्तृत तथा गंभीर है। सम्पत्ति का संचय न करना तो साधारण बात है, पर किसी भी वस्तु के साथ किसी भी प्रकार का ममत्व न रखना जैन मुनियों के लिए आवश्यक है। मनुष्य इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्द का जो अनुभव प्राप्त करता है, उस सबसे विरत हो जाना अपरिग्रह व्रत के पालन के लिए परमावश्यक है। इस व्रत के सम्यक् प्रकार पालन से मनुष्य अपने जीवन के चरम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य बनता है, और सब विषयों तथा वस्तुओं से निर्लिप्त तथा विरक्त होकर वह इस जीवन में ही सिद्ध अथवा केवली बन जाता है।

संदर्भ सूचीः–

1. हिन्दूत्व, रादास गौड़, पृ. 414–416।
2. डॉ० महेन्द्र कुमार जैन, जैन दर्शन, पृ. 2।
3. डॉ० जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 801।
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 146।
5. ऋषभदेव, 1.89.6।
6. अथर्ववेद, 11.5.24.26।
7. श्रीमद्भागवत, 5/28।
8. डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ. 9।
9. अयोध्या में जैन मत से संबंध, नवनीत, अक्टूबर, 1987।
10. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन, प्रमुख ऐतिहासिक जैनपुरूष एवं महिलाएँ, पृ. 5।
11. श्रीमद्भागवत पुराण, 5/1–6।
12. डॉ० जगदीश चन्द्र जैन, जैन अगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ. 3।
13. डॉ० हीरालाल जैन, पूर्वोक्त, पृ. 11।
14. डॉ० जगदीश चन्द्र जैन, पूर्वोक्त, पृ. 3।
15. डॉ० हीरालाल जैन, पूर्वोक्त, पृ. 11।
16. वही।
17. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन, पूर्वोक्त, पृत्र 6।
18. श्रीमद्भागवत पुराण, 5/6/12।
19. वही।

* * * * *